प्रज्ञापना सूत्र : एक समीक्षा

श्री पारसमल संचेती

प्रज्ञापना सूत्र के ३६ पदों/प्रकरणों में जीवादि पदार्थों का प्रज्ञापन/निरूपण हुआ है। इसके लिए भी व्याख्याप्रज्ञप्ति की भांति 'भगवती' विशेषण प्रयुक्त हुआ है। आगमज्ञ श्री पारसमल जी संचेती ने प्रज्ञापना सूत्र के कर्त्ता, रचनाकाल, चतुर्थ उपांगत्व, रचना शैली, व्याख्या-ग्रन्थ, अन्य सूत्रों में अतिदेश आदि की चर्चा करने के साथ प्रज्ञापना सूत्र की विषयवस्तु की भी संक्षिप्त विवेचना की है। लेख विचारपूर्ण है। —सम्पादक

नंदी सूत्र में आगमों के अंग प्रविष्ट श्रुत और अंगबाह्य श्रुत दो भेद किये गए हैं। उसमें प्रज्ञापना की गणना अंगबाह्य के उत्कालिक श्रुत में की गई है। श्वेताम्बर संप्रदाय में मान्य यह चौथा उपांग सूत्र है। जिस प्रकार आगमों में आचारांग के लिए 'भगवान'[1] एवं व्याख्याप्रज्ञप्ति के लिये 'भगवती' विशेषण उपलब्ध है उसी प्रकार प्रज्ञापना के लिये भी 'भगवती'[2] विशेषण उपलब्ध होता है। वह इसकी महत्ता का सूचक है। यह सूत्र विविध श्रुत रत्नों का खजाना है व दृष्टिवाद का निष्यन्द(निष्कर्ष) है। कहा है—

'अज्झयणमिणं चित्तं सुयरयणं दिट्ठिवायणीसंदं'[3]

प्रज्ञापना का अर्थ

'प्र' यानी विशिष्ट प्रकार से 'ज्ञापन' यानी निरूपण करना। यथावस्थित रूप से जीवादि पदार्थों का ज्ञान कराने वाली होने से यह 'प्रज्ञापना' है। 'यथावस्थितं जीवादिपदार्थज्ञापनात् प्रज्ञापना' यह अर्थ आचार्य मलधारी हेमचन्द्र ने किया है।[4] प्रज्ञापना का अर्थ करते हुए आचार्य मलयगिरि लिखते हैं—'प्रकर्षेण निःशेषकुतीर्थितीर्थकरासाध्येन यथावस्थितनिरूपण-लक्षणेन ज्ञाप्यन्ते शिष्यबुद्धावारोप्यन्ते जीवाजीवादयः अनयेति प्रज्ञापना।'[5] अर्थात् जिसके द्वारा शिष्यों को जीव—अजीव आदि तत्त्वों के यथावस्थित स्वरूप का निरूपण किया जाय, जो विशिष्ट निरूपण कुतीर्थिक प्रणेताओं के लिये असाध्य है, वह प्रज्ञापना है।

इस सूत्र में जीवादि पदार्थों के भेदों के रहने के स्थान आदि का व्यवस्थित क्रम से, विस्तार से विशिष्ट वर्णन होने से इसका प्रज्ञापना नाम सार्थक है। इस सूत्र के प्रथम पद का नाम भी प्रज्ञापना है।

रचना आधार, कर्त्ता व समय

प्रज्ञापना कर्त्ता ने आरम्भ की गाथाओं में इसे दृष्टिवाद का निष्यंद कहा है— '**अज्झयणमिणं चित्तं सुयरयणं दिट्ठिवायणीसंदं। जह वण्णियं भगवया अहमवि तह वण्णइस्सामि।।**' इससे प्रज्ञापना की रचना का आधार अनेक पूर्व रहे हों ऐसा मालूम पड़ता है।

इसके कर्त्ता के विषय में आर्यश्याम (कालक) का नाम निर्विवाद रूप

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से मान्य है। ऐसा उल्लेख सूत्र के प्रारम्भ में निर्दिष्ट मंगल के बाद की दो गाथाओं में भी है जिनको व्याख्याकार आचार्य हरिभद्र व आचार्य मलयगिरि ने अन्य कर्तृक कहा है। उनमें प्रज्ञापनाकर्ता आर्य श्याम को पूर्व श्रुत से समृद्ध भी बताया है।[6]

वर्तमान में उपलब्ध इतिहास में तीन कालकाचार्य प्रसिद्ध हैं। प्रथम जो निगोद व्याख्याता के रूप में प्रसिद्ध हैं तथा वीर निर्वाण ३७६ में कालधर्म को प्राप्त हुए। दूसरे गर्दभिल्लोच्छेदक कालकाचार्य जिनका समय वीर निर्वाण ४५३ के आसपास का है। तीसरे वीर निर्वाण ९९३ में हुए हैं। इनमें से तीसरे कालकाचार्य तो प्रज्ञापना के कर्ता हो ही नहीं सकते, क्योंकि वीर निर्वाण ९९३ तक तो प्रज्ञापना की रचना हो चुकी थी। बाकी दो कालकाचार्यों को कुछ आधुनिक विद्वान एक ही होना मानते हैं। दो मानने पर प्रथम कालकाचार्य को प्रज्ञापना कर्ता मानने की ओर अधिकांश आधुनिक विद्वानों का झुकाव है। प्राचीन ग्रंथपट्टावलियों में भी प्रज्ञापना कर्ता के रूप में इनका ही उल्लेख मिलता है। जैसे—'आद्यः प्रज्ञापनाकृत इन्द्रस्य अग्रे निगोदविचारवक्ता श्यामाचार्यापरनामा (खरतरगच्छीय पट्टावली)[7] इन कालकाचार्य का जन्म वीर निर्वाण संवत् २८०, दीक्षा वीर सं. ३००, युगप्रधान पदवी वीर सं. ३३५, मृत्यु वीर सं. ३७६ में होने का उल्लेख मिलता है।[8] इससे प्रज्ञापना रचना काल वीर सं. ३३५ से ३७६ के बीच कहीं ठहरता है।

इन कालकाचार्य का नंदी स्थविरावली में वाचक वंश परम्परा के तेरहवें स्थविर आर्य श्याम के रूप में उल्लेख है। किन्तु प्रज्ञापना सूत्र की प्रारंभ की दो प्रक्षिप्त गाथाएं[5], जो उनके शिष्य प्रशिष्यों द्वारा कृत संभव लगती है जिनका उल्लेख व्याख्याकार आचार्य हरिभद्र ने भी किया है उनमें आर्य श्याम को वाचकवंश के तेईसवें धीर पुरुष कहा है (वायगवरवसाओ तेवीसइमेणं धीरपुरिसेणं)। इसका समाधान इस प्रकार से किया जाता है कि वाचक वंश परम्परा के तेरहवें पाट पर नंदी स्थविरावली में आर्य श्याम है उनमें से आर्य सुधर्मा को कम करने पर १२ रहे। वाचक वंश प्रमुख ११ ही गणधर भगवंत तथा उनके बाद उनके पाट पर होने वाले बारहवें वाचक वंश प्रमुख आर्य श्याम वाचकवंश परम्परा में तेईसवें धीर पुरुष हो जाते हैं। ऐसा समाधान 'विचारश्रेणि' में भी दिया गया है[8] अथवा लिपि प्रमाद से 'तेरसमेणं' की जगह 'तेवीसइमेणं' शब्द हो गया हो यह भी संभव लगता है।

स्थानकवासी परम्परा ने उनको ही आगम रूप से मान्य किया है जो लगभग दशपूर्वी या उनके ऊपर वालों की रचना हो। नंदीसूत्र में भी स्थविरावली जो कि देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमण (देववाचक) द्वारा कृत है को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छोड़कर अन्य प्रायः सभी पाठ प्राचीन नंदी[९] के मान्य होने से ही उसको आगम की कोटि में रखा गया है। इसीलिये स्थविरावली को पढ़ने में अस्वाध्याय काल का वर्जन नहीं किया जाता है बाकी सूत्र को पढ़ने के लिये अस्वाध्याय काल का वर्जन किया जाता रहा है। नंदीसूत्र में वर्णित अंगबाह्य कालिक व उत्कालिक सूत्रों में जो क्रम दिया गया है उसका आधार उनका रचना काल क्रम रहा है, विशेष बाधक प्रमाण के अभाव में ऐसा मान लिया जाय तो ऐसा कहा जा सकता है कि प्रज्ञापना सूत्र की रचना दशवैकालिक, औपपातिक, राजप्रश्नीय तथा जीवाभिगम सूत्र के बाद व नंदी, अनुयोगद्वार के पूर्व हुई है। अनुयोगद्वार सूत्र के कर्त्ता आर्यरक्षित थे। उनके पूर्व का आर्य स्थूलिभद्र तक का काल १० पूर्वधरों का काल रहा है। यह बात इतिहास से सिद्ध है[८] तथा आर्य श्याम इसके मध्य होने वाले वाचक वंश में युगप्रधान है। यह निश्चित हो जाता है कि प्रज्ञापना १० पूर्वधर आर्य श्याम की रचना है। अतः तीनों ही श्वेताम्बर सम्प्रदायों में यह आगम रूप से मान्य है।

क्या प्रज्ञापना चौथा उपांग सूत्र है

व्याख्या-साहित्य में प्रज्ञापना सूत्र को चौथे अंग समवायांग सूत्र का उपांग बताया गया है।[१०] स्थानांग, राजप्रश्नीय, नंदी, अनुयोगद्वार में श्रुत के दो भेद अंग प्रविष्ट और अंगबाह्य (अनंग प्रविष्ट) किये हैं। समवायांग, उत्तराध्ययन व नंदी सूत्र में अंगबाह्य के 'प्रकीर्णक' भेद को भी बताया है।[११] आगमों में सिर्फ एक जगह निरियावलिका पंचक में अंगबाह्य के अर्थ में उपांग शब्द भी प्रयुक्त हुआ है। आचार्य उमास्वाति ने भी तत्त्वार्थभाष्य में अंगबाह्य के सामान्य अर्थ में उपांग शब्द का प्रयोग किया है।[११] जिस प्रकार वेद—वेदांगों के उपांग सूत्र किसी वेद या वेदांग विशेष से संबंधित नहीं होकर उनके पूरक या सहायक व्याख्या ग्रंथ रहे हैं, उसी प्रकार अंग सूत्रों के सहायक पूरक या अंगांशों को अंगबाह्य या उपांग सूत्र भी कहा जाता रहा है। धीरे—धीरे अंग बाह्यों को विशेष अंगों से संबंधित किया जाने लगा और विशेष अंगों के संबंध में उपांग संज्ञा कही जाने लगी। आरम्भ में निरयावलिका सूत्र में 'उपांग' शब्द अंगबाह्य के सामान्य अर्थ में आया है क्योंकि ऐसा कोई संकेत नहीं मिलता है कि उनका निर्माण विशेष अंगों के उपांग रूप में किया गया हो। प्रज्ञापना की हरिभद्रीय प्रदेश वृत्ति में भी प्रज्ञापना के समवायांग सूत्र के उपांग होने का कोई उल्लेख नहीं मिलता है। किंतु नवांगी टीकाकार अभयदेव सूरि के समय तक सूर्यप्रज्ञप्ति को पांचवें अंग भगवती के व जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति को छठे अंग ज्ञाताधर्म कथा के उपांग की संज्ञा प्राप्त हो गयी थी, परन्तु चन्द्रप्रज्ञप्ति सूत्र प्रकीर्णक ही रहा। ऐसा उल्लेख उनकी स्थानांग की चौथे स्थान की टीका में है।[१२] इसके बाद होने वाले

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य श्रीचन्द्र के समय चन्द्र प्रज्ञप्ति सूत्र सातवें अंग के उपांग स्थान को प्राप्त कर चुका था, लेकिन निरयावलिका आदि पांच सूत्र निश्चित रूप से उपांग संज्ञा को प्राप्त नहीं हुए थे।[१३] यद्यपि उपासकदशा से चन्द्रप्रज्ञप्ति का एवं पीछे के पांच अंगों से निरियावलिका आदि सूत्रों का विषय-संबंध कोई स्पष्ट नहीं होता है। आचार्य जिनप्रभ जिन्होंनें ई. १३०६ में विधिमार्गप्रपा ग्रंथ की रचना की थी। उसमें स्पष्ट रूप से १२ अंगों के साथ १२ उपांगों का जिस अंग का जो उपांग है निर्देश किया है एवं आगमों का अंग, उपांग, मूल और छेद रूप में विभाजन सर्वप्रथम इस ग्रंथ में उपलब्ध होता है।

इस तरह जो सूत्र आरंभ में तथा अंग सूत्रों के मध्य पढ़ाये जाते थे उनको छोड़कर शेष उपलब्ध आगम धीरे-धीरे उन-उन कारणों से (आगमों को श्रुत पुरुष की व्याख्या से समझाना आदि) उन-उन अंगों से संबंधित होते हुए स्पष्ट उपांग संज्ञा को प्राप्त हो गये। श्रमण जीवन में मूल सहायक होने से व आरंभ में पढ़ाये जाने वाले आगम मूल संज्ञा को, अंगों के मध्य पढ़ाये जाने वाले प्रायश्चित्त आदि के विधायक होने से छेद संज्ञा को, बाकी आगम उपांग संज्ञा को प्राप्त कर व्यवस्थित हो गये।[१४] इस तरह प्रज्ञापना सूत्र चौथे उपांग सूत्र रूप में व्यवस्थित हुआ। टीकाकार आचार्य मलयगिरि ने भी अपनी प्रज्ञापना टीका में इसे चौथे अंग का उपांग कहा है। चौथे अंग से इसका संबंध इस प्रकार से कहा जा सकता है कि श्वासोच्छ्वास, संज्ञा, कषाय, इन्द्रिय, योग, क्रिया, कर्म, उपयोग समुद्घात आदि के विषय में जहां समवायांग सूत्र में संक्षेप में वर्णन है, प्रज्ञापना में उनका विस्तार से वर्णन है। प्रथम पद प्रज्ञापना, व्युत्क्रांति, अवगाहना, संस्थान, लेश्या, आहार, अवधि, वेदना पद का समवायांग में 'जाव' आदि शब्दों से संक्षेप हुआ है। उनका प्रज्ञापना में पूरा खुला पाठ दिया गया है। भगवती सूत्र में तो लगभग पूरे प्रज्ञापना सूत्र का समावेश हो जाता है। वह प्रज्ञापना से निकट संबंध रखता है।

रचना शैली

प्रज्ञापना सूत्र उपांगों में सबसे बड़ा सूत्र है। यह समग्र ग्रंथ ७८८७ श्लोक प्रमाण है। यह ३६ प्रकरणों में विभक्त है जिनको कि पद कहा गया है। समग्र ग्रंथ की रचना प्रश्नोत्तर रूप में है। यह आगम मुख्यतया गद्यात्मक है, कुछ भाग पद्य में भी है। इसमें आयी हुई गाथाओं का परिमाण २७२ है। प्रथम पद में काफी गाथाएं हैं। पदों के आरम्भ में विषय या द्वार सूचक और कहीं मध्य में तो कहीं उपसंहार सूचक गाथाएं आयी हुई हैं। विषयों का विस्तार से वर्णन है। प्राय: पदों में २४ दण्डकों में जीवों को विभाजित कर विषय निरूपण किया गया है। सूत्र की भाषा अर्द्धमागधी है जिस पर महाराष्ट्री प्राकृत का असर हुआ है, ऐसा आधुनिक विद्वान मानते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रज्ञापना सूत्र के व्याख्या ग्रंथ

प्रज्ञापना सूत्र की अनेक प्राचीन ताड़पत्रीय तथा कागज पर लिखी हस्तलिखित प्रतियां उपलब्ध होती हैं। श्री शांतिनाथ ताड़पत्रीय जैन भण्डार खंभात तथा जैसलमेर के जिनभद्रसूरि ज्ञान भण्डार में विक्रम की १४वीं सदी की ताड़पत्रीय प्रतियां उपलब्ध होती है तथा विक्रम की सोलहवीं सदी की कागज पर लिखी प्रतियां भी मिलती हैं। समय--समय पर आचार्यों ने प्रज्ञापना पर अनेक व्याख्याएं भी लिखी हैं, जो सूत्र को सुगम बना देती हैं। उनमें से निम्न व्याख्याएं आजकल उपलब्ध होती हैं[6]--

1. **प्रज्ञापना प्रदेश व्याख्या**– इसके कर्त्ता भवविरह हरिभद्रसूरि (समय ई.सं. ७०० से ७७०) है। प्रज्ञापना के अमुक अंशों का इसमें अनुयोग है।

2. **प्रज्ञापना तृतीय पद संग्रहणी तथा उसकी अवचूर्णि**– आचार्य अभयदेव (सं.११२०) ने तीसरे अल्पबहुत्व पद संग्रहणी की रचना की है तथा इस पर लिखी एक अवचूर्णि भी उपलब्ध होती है। इसके कर्ता कुलमंडन सूरि ने संवत् १४४१ में इसकी रचना की है।

3. **विवृति (टीका)**–आचार्य मलयगिरि ने संस्कृत भाषा में प्रज्ञापना पर विस्तृत व्याख्या लिखी है। लेखनकाल सं. ११८८ से १२६० के बीच का है। सम्पूर्ण प्रज्ञापना सूत्र को समझने में प्रमुख आधारभूत यह टीका है।

4. **श्री मुनिचन्द्रसूरि (स्वर्गवास सं. 1178) कृत वनस्पति विचार**– ७१ गाथाओं में प्रज्ञापना के आद्य पद में आयी हुई वनस्पतियों पर विचार किया गया है। इस पर एक अज्ञात लेखक की अवचूरि भी है।

5. **प्रज्ञापना बीजक**–हर्षकुल गणी ने लिखा है। प्रति पर लेखन संवत् १८५९ लिखा है।

6. **श्री पद्मसुंदर कृत अवचूरि**– यह अवचूरि पद्मसुंदरजी ने मलयगिरि टीका के आधार पर रची है। इसकी हस्तलिखित प्रति सं. १६६८ में लिखी हुई मिलती है।

7. **श्री धनविमलकृत टब्बा**– रचना सं. १७६७

8. **श्री जीवविजयजी कृत टब्बा**– रचना सं. १७७४

9. **श्री परमानंद जी कृत स्तबक**–रचना सं. १८७६

10. **श्री नानचंदजी कृत संस्कृत छाया**–प्रज्ञापना का संस्कृतानुवाद है। अनुवादकर्ता श्री नानचंद जी म.सा. ई. सं. १८८४ में विद्यमान थे।

11. **अज्ञात कर्तृक वृत्ति**

12. **प्रज्ञापना सूत्र भाषांतर**–पं. भगवानदासजी हरखचन्दजी द्वारा

13. **प्रज्ञापना पर्याय**– कुछ विषम पदों के पर्याय रूप है।

इनमें से क्रम संख्या १,२,३,१० व १२ की व्याख्याएँ प्रकाशित हो चुकी हैं। इनके अलावा प्रज्ञापना सूत्र पर हिन्दी व गुजराती में अनेक भाषान्तर व विवेचन प्रकाशित हुए हैं। जिनमें श्री अमोलकऋषिजी म.सा. कृत आगम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का हिंदी अनुवाद, श्री घासीलाल जी म.सा. कृत संस्कृत में विस्तृत टीका तथा उसका हिन्दी व गुजराती अनुवाद तथा युवाचार्य श्री मिश्रीमल जी म. सा. के प्रधान सम्पादन में आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर से निकला हिन्दी संस्करण आदि हैं।

प्रज्ञापना सूत्र की अन्य सूत्रों में भलामण या अतिदेश

आगम लेखनकाल में देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण ने अनेक आगमों में आये हुए कई मिलते जुलते पाठों को एक आगम में रखकर अन्य आगम में 'जाव' आदि शब्दों से संक्षेप कर उस आगम में देखने का संकेत किया है, जिससे समान पाठ बार–बार न लिखना पड़े तथा आगमों का कलेवर छोटा रहे। अनेक आगमों में पाठों को संक्षिप्त कर प्रज्ञापना से देखने का भी अतिदेश किया गया है। समवायांग सूत्र के जीव–अजीव राशि विभाग में प्रज्ञापना के १,६,१७,२१,२८,३३,३५ पद देखने की भलामण दी है। इसी तरह भगवती सूत्र में प्रज्ञापना सूत्र के १,२,३,४,५,६,७,८,९, १०,११,१२,१३,१४,१५,१६,१७,१८,१९,२०,२१,२२,२३,२४,२५, २६,२८,२९,३०,३२,३३,३४,३५,३६ इन पदों से विषय पूर्ति कर लेने का संकेत किया गया है। जीवाभिगम सूत्र में प्रथम प्रज्ञापना, दूसरे स्थानपद, चौथा स्थिति, छठा व्युत्क्रांति तथा अठारहवें कायस्थिति पद की अनेक जगह भलामण है।[१५]

विषयवस्तु

प्रज्ञापना सूत्र प्रधानतया द्रव्यानुयोगमय है। कुछ गणितानुयोग व प्रसंगोपात्त इतिहास आदि के विषय इसमें सम्मिलित हैं। जीवादि द्रव्यों का इसमें सविस्तार विवेचन है। वृत्तिकार मलयगिरि पदों के विषय का विभाजन ७ तत्त्वों में इस प्रकार से करते है–

१–२ जीव अजीव तत्व	–१,३,५,१०,१३ वाँ पद
३ आस्रव	–१६ व २२वाँ पद
४. बंध	– २३ वाँ पद
५–७ संवर, निर्जरा और मोक्ष	– ३६ वां पद

बाकी के पदों में कहीं किसी तत्त्व का, कहीं किसी का निरूपण है। आचार्य मलयगिरि ने द्रव्यादि चार पदों में भी इन पदों का विभाजन किया हैं–

द्रव्य का	– प्रथम पद में
क्षेत्र का	– द्वितीय पद में
काल का	– चौथे पद में
भाव का	– शेष पदों में

द्रव्यानुयोगप्रधान स्थानांग, भगवती, जीवाभिगम आदि सूत्रों के अनेक विषय इससे मिलते जुलते हैं। भगवती सूत्र में तो लगभग पूरा प्रज्ञापना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समाविष्ट हो जाता है। दिगम्बर ग्रंथ षट्खण्डागम तथा उसी के आधार से बने गोम्मटसार से भी कई विषय मेल खाते हैं। संक्षेप में धर्म, साहित्य, दर्शन, भूगोल के कई विषयों का इसमें समावेश है।

सूत्रकार आर्य श्यामाचार्य ने सूत्र के आरम्भ में सिद्धों को नमस्कार करके त्रैलोक्य गुरु भगवान महावीर को नमस्कार किया है।[१६] आगे की गाथाओं में यह बताया है कि भगवान् ने जिस प्रकार से सर्वभावों की प्रज्ञापना की है उसी प्रकार मैं भी चित्र श्रुत रत्न एवं दृष्टिवाद के निष्यंद रूप अध्ययन को कहूंगा। फिर क्रमशः ३६ पदों के नाम दिये हैं।

प्रथमादि पदों की विषयवस्तु संक्षेप में निम्न है–

1. प्रज्ञापना पद– प्रथम पद में प्रज्ञापना को दो भागों में विभक्त किया है (अ) जीव प्रज्ञापना (ब) अजीव प्रज्ञापना। प्रथम अजीव प्रज्ञापना को कहते हुए उसके दो भेद बताये हैं– रूपी अजीव व अरूपी अजीव। अरूपी अजीव के १० भेद एवं रूपी अजीव के ५३० भेदों का वर्णन किया है। जीव प्रज्ञापना में जीवों के दो भेद किये है संसारी और सिद्ध। सिद्ध जीवों के भेद बताने के बाद संसारी जीवों का विस्तार से वर्णन भेदों के द्वारा बताया है। पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, नारकी, जलचर, स्थलचर, खेचर, उरपरिसर्प, भुजपरिसर्प, मनुष्य तथा देवों के प्रकार समझाये गये हैं। मनुष्यों के सम्मूर्च्छिम, अकर्मभूमिज, अंतरद्वीपज, कर्मभूमिज आदि प्रकारों के नाम गिनाये गये हैं। कर्मभूमिज मनुष्यों के भेदों में म्लेच्छ जातियों एवं आर्यों का वर्णन है। आर्यो के अनेक भेद करते हुए उस समय की आर्य जाति या कुल, शिल्प, कर्म, लिपि एवं आर्य देशों का वर्णन किया है। ज्ञान, दर्शन, चारित्र आर्यों का वर्णन है।

इस प्रकार इस पद में जीव–अजीवों को व्यवस्थित वर्गीकरण के द्वारा समझाया है। सम्पूर्ण विश्व में जैन दर्शन ही एक मात्र दर्शन है जिसने वनस्पति आदि एकेन्द्रियों में भी स्पष्ट रूप से जीवत्व स्वीकार किया है तथा उनकी रक्षा के लिए सर्वांगीण उपाय बताये हैं। वनस्पति आदि की रक्षा मुख्यतया पर्यावरण की शुद्धि पर आधारित है।

आधुनिक वैज्ञानिकों ने भी वनस्पति को सचेतन सिद्ध कर दिया है। वह आहार ग्रहण करती है, बढ़ती है, श्वासोच्छ्वास लेती है, रोगी होती है तथा मरती भी है। विभिन्न प्रकार के प्रयोगों के द्वारा वैज्ञानिकों ने निष्कर्ष निकाला है कि वनस्पति भयभीत होती है, हर्षित होती है। वनस्पति विज्ञान में पौधों की मैथुन क्रिया का विशद वर्णन है। प्रज्ञापना के इस पद में वनस्पति को सचेतन माना है। आगे के पदों में उनके आयु, श्वासोच्छ्वास, भोजन, हर्ष, दुःख आदि का वर्णन है। कषाय पद में बताया है कि वनस्पति को क्रोध आता है, वह मान भी करती है, उसमें माया भी होती है, उसमें लोभ भी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होता है, वह परिग्रह भी रखती है।

अजीव प्रज्ञापना में बताये हुए द्रव्यों को आधुनिक विज्ञान ने भी किसी न किसी रूप में स्वीकार किया है। धर्मास्तिकाय को ईथर (Ether), अधर्मास्तिकाय को गुरुत्वाकर्षण का क्षेत्र (Field of gravitation) के रूप में, पुद्गल (Matter) आकाश एवं काल को भी माना है। किन्तु वैज्ञानिकों द्वारा माने हुए परमाणु तथा काल की सूक्ष्म ईकाई से जैन दर्शन के परमाणु तथा काल की ईकाई अति सूक्ष्म है।

2. **स्थान पद**– उपर्युक्त प्रथम पद में आये हुए जीवों के रहने के स्थान का वर्णन है।

3. **अल्पबहुत्व पद**– दिशा, गति, इन्द्रिय आदि २७ द्वारों से जीवों का अल्पबहुत्व है। अजीवों का द्रव्य, क्षेत्र, काल एवं भाव की अपेक्षा से अल्पबहुत्व बताया है तथा अंत में आगमों का सबसे बड़ा अल्पबहुत्व महादण्डक (९८ बोल की अल्पबहुत्व) है।

4. **स्थिति पद**– चौबीस ही दण्डकों के जीवों के पर्याप्त व अपर्याप्त की स्थिति का वर्णन है।

5. **विशेष अथवा पर्याय पद**– जीव अजीव के पर्यायों की द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा तुलना की गयी है।

6. **व्युत्क्रांति पद**– जीवों की गति आदि में उत्पात, उद्वर्तन संबंधी विरह, उनके उत्पन्न होने की संख्या का वर्णन है। साथ ही यह बताया गया है कि वे कहां से आकर उत्पन्न हो सकते हैं तथा मरकर कहां–कहा जा सकते हैं।

7. **उच्छ्वास पद**– इस पद में नैरयिक आदि २४ दण्डकों के उच्छ्वास ग्रहण करने और छोड़ने के काल का वर्णन है।

8. **संज्ञा पद**– आहारादि १० संज्ञाओं के आश्रय से जीवों का वर्णन है।

9. **योनि पद**– जीवों के उत्पन्न होने की योनियों के विभिन्न प्रकारों का वर्णन है।

10. **चरम पद**– रत्नप्रभा पृथ्वी आदि, परमाणु आदि व जीवों में चरम–अचरम का कथन है।

11. **भाषा पद**–भाषा के भेद, उनके बोलने में प्रयोग में आने वाले द्रव्यों का वर्णन करते हुए बताया है कि किस प्रकार बोले जाने पर भाषा के द्रव्य सारे लोक में फैल जाते हैं। उन ध्वनि तरंगों रूप द्रव्यों को ग्रहण कर शब्द सुने जाते हैं। जैन दर्शन सिवाय अन्य भारतीय दार्शनिक विचारधाराएं शब्द को आकाश का गुण मानती रही है जबकि जैन दर्शन उनको पुद्गल मानता है। जैन धर्म की इस विलक्षण मान्यता को भी विज्ञान ने प्रमाणित कर दिया है।

12. **शरीर पद**– औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस और कार्मण शरीर कितने हैं? किन जीवों को कितने प्राप्त हैं तथा उनसे छूटे द्रव्य (मुक्त शरीर) कितने हैं? इस प्रकार का वर्णन है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

13.परिणाम पद– जीव के गति आदि १० परिणामों का २४ दण्डकों में विचार किया गया है। अजीव के बंधन आदि दस परिणामों का वर्णन करते हुए बताया है कि किस प्रकार के पुद्‌गलों का आपस में बंध होता है। जैन दर्शन पुद्‌गलों में पाये जाने वाले स्निग्धत्व और रूक्षत्व इन दो गुणों के कारण बंध होना मानता है। वैज्ञानिक भी धन विद्युत (Positive Charge) और ऋण विद्युत (Negative Charge) इन दो स्वभावों को पुद्‌गलों के बंध का कारण मानते हैं।[१७]

14.कषाय पद– क्रोधादि चारों कषायों के भेदों का २४ दण्डकों में वर्णन एवं उनसे होने वाले कर्मों के बंधादि का वर्णन है।

15.इन्द्रिय पद– इसके दो उद्देशक हैं। प्रथम उद्देशक में इन्द्रियों का संस्थान, रचना के द्रव्य विषयादि का वर्णन है। द्रव्यों की पृथ्वीकायादि से स्पर्शना व द्वीप समुद्र के नामों का उल्लेख भी है। द्वितीय उद्देशक में इन्द्रिय उपयोग के अवग्रहादि प्रकार, अतीत, बद्ध (वर्तमान) और पुरस्कृत (भविष्य में होने वाली) द्रव्येन्द्रियों एवं भावेन्द्रियों के आश्रय से जीवों का वर्णन है।

16.प्रयोग पद– जीव के सत्यमनोयोग आदि १५ योगों एवं प्रयोगगति आदि पांच भेदों की गतियों का वर्णन है। इस पद से नारकी और देवता के उत्तर वैक्रिय में भी वैक्रिय मिश्र योग शाश्वत बताया गया है। वैक्रिय मिश्रयोग मात्र अपर्याप्त अवस्थाभावी मानने पर वह शाश्वत नहीं रहता। क्योंकि देवता तथा नारकी निरंतर अपर्याप्त नहीं मिलते हैं। इसलिये इनके पर्याप्त अवस्था में उत्तर वैक्रिय करते हुए वैक्रिय मिश्र मानने पर ही इसकी शाश्वतता सिद्ध हो सकती हैं।

जीव तथा पुद्‌गलों की विभिन्न गतियों का वर्णन इस पद में है। आधुनिक विज्ञान द्वारा मान्य ध्वनिगति एवं प्रकाश गति से भी अतिशीघ्र पुद्‌गलों तथा जीव की गति होती है, यह इसमें बताया है।

17. लेश्या पद– छः उद्देशकों में लेश्या संबंधी विस्तार से वर्णन है।

18.कायस्थिति पद– जीव, गति, इन्द्रिय आदि २१ द्वारों से काय स्थिति का वर्णन है।

19.सम्यक्त्व पद– सम्यक्, मिथ्या और मिश्र इन तीन दृष्टियों का २४ दण्डकों में विवेचन है।

20.अंतक्रिया पद– कौनसा जीव अपने भव से मनुष्य बन कर मोक्ष जा सकता है, कौन तीर्थंकर चक्रवर्ती एवं उनके १४ रत्न रूप में उत्पन्न हो सकता है, आदि वर्णन है।

21.अवगाहना संस्थान पद–पांचों शरीरों की अवगाहना आदि का वर्णन है।

22.क्रिया पद कायिकी आदि विभिन्न क्रियाओं का विस्तार से वर्णन है।

23. कर्म प्रकृति पद– पहले उद्देशक में आठ कर्मों के बंध, उनके फल तथा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दूसरे उद्देशक में आठ कर्मों की उत्तर प्रकृतियों एवं उनकी स्थिति आदि का वर्णन है।

24.कर्म बंध पद– आठ कर्मों में से एक--एक कर्म के बांधते हुए अन्य कर्मों के बंध का उल्लेख है।

25. कर्म वेद पद– आठ कर्मों को बांधते हुए अलग–अलग कर्म वेदने का उल्लेख है।

26. कर्म वेद बंधपद– कौनसे कर्म वेदते हुए किन–किन कर्मों का बंध होगा, इसका वर्णन है।

27. कर्म वेद वेद पद– एक–एक कर्म वेदते हुए अन्य कौन से कर्मों का वेदन होता है इनके परस्पर भंग बनाते हुए वर्णन किया है।

28. आहार पद– जीवों के आहार का विस्तार से, **29 उपयोग पद**–१२ उपयोग का। **30. पश्यत्ता पद**– साकार पश्यता तथा अनाकार पश्यता का। **31. संज्ञी पद**– संज्ञी, असंज्ञी, नो संज्ञी, नो असंज्ञी जीवों का। **32. संयत पद**– संयत, असंयत, संयतासंयत तथा नो संयत, नो असंयत, नो संयतासंयत जीवो का। **33. अवधि पद**– जीवों के अवधि विषय, संस्थान, भेदों का **34 प्रविचारणपद**– देवों के परिचारणा का। **35. वेदना पद**– साता, असाता आदि वेदनाओं का। **36. समुद्घात पद**– वेदना आदि सात समुद्घातों का विस्तार से वर्णन है।

केवली समुद्घात के बाद योग निरोध से शैलेषी अवस्था को प्राप्त कर चार अघाति कर्मों का क्षयकर आत्मा सिद्ध, बुद्ध और मुक्त होती है। जिस प्रकार जले हुए बीजों की पुन: अंकुर-उत्पत्ति नहीं होती है उसी प्रकार सिद्ध भगवान के कर्म बीज जल जाने से पुन: जन्मोत्पत्ति नहीं होती है। वे शाश्वत अनागत काल तक अव्याबाध सुखों में स्थित होते हैं।

इस सूत्र को पढ़ने का उपधान तप ग्रंथों में तीन आयम्बिल बताया गया है। प्रज्ञापना सूत्र का यह संक्षेप में विवेचन किया गया है। आगमों में ज्यों--ज्यों अवगाहन किया जाता है त्यों-त्यों अद्भुत आनंद रस की प्राप्ति होती है। जिस प्रकार वैज्ञानिक लोगों को रिसर्च करते नयी-नयी जानकारी प्राप्त होने पर अपूर्व आह्लाद की प्राप्ति होती है। उसी तरह आगमों से नया-नया ज्ञान प्राप्त होने पर अपूर्व आनंद की अनुभूति होती है। श्रद्धा सहित पढ़ने वाला अनुपम आत्म-सुख को प्राप्त करता है।

संदर्भ

१. आयारस्स भगवओ सचूलियागस्स। समवायांग सूत्र, समवाय १८,२५,८५
२. पण्णवणाए भगवईए पढमं पण्णवणा वयं समत्तं(इसी प्रकार सभी पदों के अंत में)
३. प्रज्ञापना सूत्र प्रारंभ की गाथा नं. ३(५)
४. अनुयोग द्वार टीका
५. प्रज्ञापना टीका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६. वायगवरवंसाओ तेवीसइमेणं धीरपुरिसेण,
दुद्धरधरेण मुणिणा पुव्वसुयसमिद्धबुद्धीणं।
सूयसागरा विणेऊण जेण सुयरयणमुत्तमं दिण्णं,
सीसगणस्स भगवओ तस्स नमो अज्जसामस्स।।

७. जैनागम ग्रंथमाला— पण्णवणा सुत्तं।

८. जैन धर्म का मौलिक इतिहास

९. निर्युक्तियाँ जो देवर्द्धिगणि के पूर्ववर्ती गिनी भी जाती हैं, उनमे नंदी का उल्लेख है— "नंदी अणुओगदारं विहिवदुग्घाइयं च नाउणं"। निर्युक्ति संग्रह आव. नि. गाथा १०२६
सुत्तं नंदी माइयं—वही गाथा सं. १३६५
द्वादशार नयचक्र की सिंहगणि क्षमाश्रमण की टीका में वर्तमान नंदी से भिन्न पाठ हैं।

१०. प्रज्ञापना की मलयगिरि टीका व अनेक ग्रंथों में।

११. समवायाग समवाय ८४ तथा उत्तराध्ययन अ. २८
अन्यथा ह्यनिबद्धमंगोपांगत: समुद्रप्रतरणवद् दुरध्यवसेयं स्यात्। —तत्त्वार्थ भाष्य

१२. तत्र सूरप्रज्ञप्ति जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, पंचषष्ठांगयोरुपांगभूते इतरे (चंद्रप्रज्ञप्ति) तु प्रकीर्णरूपे इति।

१३. सुखबोधा समाचारी ११९२ ई. (जैन साहित्य का वृहद् इतिहास)

१४. सुखबोधा समाचारी वायणाविहि आदि (जैन साहित्य का वृहद् इतिहास)

१५. कहीं मात्र 'जाव' शब्द से, कहीं 'जाव' व 'जहा पण्णवणाए' सूत्र निर्देश के साथ, कहीं 'जहा वक्कंतीए, ओहीपयं भणियव्वं' आदि पद के नाम देते हुए, कहीं 'जहा पण्णवणाए ठाणपए' सूत्र के साथ पद का नाम देते हुए आदि तरीकों से संकेत किया गया है।

१६. ववगयजरमरणभए सिद्धे अभिवंदिऊण तिविहेण।
वंदामि जिणवरिंदं तेलोक्कगुरु-महावीरं।।

१७. जीव अजीव तत्त्व— श्री कन्हैयालाल लोढा

—पाली बाजार, महामंदिर, जोधपुर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org